JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली के अंतर्गत अभियोजन तंत्र की सामयिक समस्याओं और चुनौतियों का वैधानिक विश्लेषण :-

दिग्विजय सिंह सिकरवार
सहायक प्राध्यापक, विधि
शास. पी.जी. महाविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

शोध सारांश -

आपराधिक न्याय प्रणाली के अंतर्गत अनुसंधान एजेंसी (पुलिस), अभियोजन, न्यायालय और सुधारात्मक संस्थाओं इन सभी अनिवार्य घटकों को एक-दूसरे के साथ सामंजस्य बनाते हुए कार्य करना होता है। इन समस्त घटकों के मध्य विकसित पारस्परिक सामंजस्य ही आपराधिक न्याय प्रणाली की सफलता का निर्धारण करता है। आपराधिक न्याय प्रणाली के अंतर्गत अभियोजन तंत्र को किसी भी बाहरी प्रभाव से स्वतंत्र होकर अपनी भूमिका निभानी होती है। यह शोध पत्र भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली के अंतर्गत अभियोजन तंत्र की स्थिति, नियुक्तियों, उनकी भूमिका, उनकी समस्याओं और उन समयाओं के समाधान से संबंधित सुझावों पर विश्लेषणात्मक रूप से बल देता है। इस शोध पत्र में अभियोजन तंत्र द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन करते समय सामने आने वाली सामयिक समस्याओं और चुनौतियों को शोध पत्र में कुछ मूल्यवान सुझावों के साथ प्रमुखता से जगह दी गई है। शोध पत्र में अभियोजन प्रणाली से संबंधित माननीय सुप्रीम कोर्ट के प्रासंगिक निर्णयों को भी रेखांकित किया गया है।

1. भूमिका -

सभ्य मानव समाज में घटित होने वाली आपराधिक घटनाओं, आपराधिक मामलों का समाधान करने के लिए विधिक तंत्र एवं विधिक प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली के अंतर्गत अभियोजन पक्ष को मूल रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए संरचित किया गया है कि समाज में निजी प्रतिशोध के स्थान पर विधि का शासन अर्थात रूल ऑफ लॉ प्रभावी हो। अभियोजन तंत्र की यह भूमिका महज एक प्रक्रियात्मक आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह संवैधानिक अधिदेश (कांस्टीट्यूशनल मैंडेट) भी है। भारत में अभियोजन तंत्र को सामान्यतः "न्याय प्रशासक" के रूप में रेखांकित किया जाता है।[1] अभियोजन तंत्र की मूलभूत अवधारणा है कि यह दोषसिद्धि की सरल खोज से परे एक कर्तव्य का प्रतिनिधित्व करता है। अभियोजन तंत्र की अपनी एक विशिष्ट पहचान आपराधिक न्याय प्रणाली के अंतर्गत निष्पक्षता, सत्यता और न्याय के सुनिश्चितीकरण के लिए न्यायालय की सहायता करने वाले महत्वपूर्ण घटक के रूप में निर्धारित है।[2] भारत के विधिक इतिहास में अभियोजन तंत्र का संरचनात्मक विकास दंड प्रक्रिया संहिता 1861, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 एवं अब वर्तमान स्थिति में भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (बीएनएसएस) 2023 के अंतर्गत हुआ है।

[1] भारतीय विधि आयोग की लोक अभियोजक की नियुक्ति संबंधी 197 वीं रिपोर्ट (2006)

[2] R.V. Kelkar's Criminal Procedure, K.N. Chandrasekharan Pillai, 6th Edition, 2018, Eastern Book Company.

2. भारत में अभियोजन तंत्र की विधिक संरचना -

भारत में अभियोजन तंत्र की संरचना विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग की गयी है। राज्य के सक्षम विधिक प्रतिनिधि द्वारा मजिस्ट्रेट न्यायालय से लेकर उच्च न्यायालय तक न्यायपालिका के हर स्तर पर प्रतिनिधित्व किया जा सके, यह सुनिश्चित करने के लिए अभियोजन का नियोजित पदानुक्रम निर्धारित किया गया है।

2.1 लोक अभियोजकों की श्रेणियाँ -

दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी), 1973 जिसने 50 वर्षों तक प्राथमिक प्रक्रियात्मक विधि के रूप में कार्य किया है, इसके अंतर्गत अभियोजन पक्ष को कई श्रेणियों में व्यवस्थित किया गया था। वर्तमान में भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के अंतर्गत अभियोजन पक्ष को नियोजित पदानुक्रम में व्यवस्थित किया गया है।

I. **लोक अभियोजक और अतिरिक्त लोक अभियोजक** :-

लोक अभियोजक और अतिरिक्त लोक अभियोजक को प्रत्येक उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय के लिए नियुक्त किया जाता है। उच्च न्यायालय में उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा नियुक्तियां की जाती हैं। प्रत्येक जिले के लिए, राज्य सरकार सत्र न्यायाधीश के परामर्श से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए गए पैनल से एक लोक अभियोजक की नियुक्ति करती है।[3]

II. **विशेष लोक अभियोजक :-**

विशिष्ट मामलों या मामलों के वर्गों के लिए विशेष लोक अभियोजक राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है, जिसके लिए एक अधिवक्ता के रूप में कम से कम 10 वर्ष की प्रैक्टिस की आवश्यकता होती है।[4]

III. **सहायक लोक अभियोजक :**-

सहायक लोक अभियोजकों को मजिस्ट्रेट न्यायालयों में अभियोजन संचालित करने के उद्देश्य से नियुक्त किया जाता है। लोक अभियोजकों के विपरीत सहायक लोक अभियोजक आमतौर पर राज्य के नियमित अधिकारी होते हैं और एक स्थायी कैडर से संबंधित होते हैं।[5]

2.2 नियुक्ति तंत्र और योग्यताएं

राज्य सरकार किसी जिले के लिए लोक अभियोजक की नियुक्ति केवल तभी कर सकती है जब उसका नाम सत्र न्यायाधीश के परामर्श से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार किए गए नामों के पैनल में सम्मिलित हो। कार्यपालिक विवेकाधिकार को इस नियुक्ति प्रक्रिया में अधिवक्ता की योग्यता और चरित्र के संबंध में न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा नियंत्रित किया गया है।[6] एक अधिवक्ता के रूप में न्यूनतम 07 वर्ष का विधिक व्यवसाय का अनुभव लोक अभियोजक या अतिरिक्त लोक अभियोजक के रूप में नियुक्ति के लिए वैधानिक आधार के रूप में निर्धारित किया गया है।

2.3 अभियोजन निदेशालय :-

सीआरपीसी में 2005 के संशोधन द्वारा एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन किया गया था, जिसमें धारा 25A को शामिल किया गया था, जो हर राज्य में अभियोजन निदेशालय की स्थापना का प्रावधान करता था। अब वर्तमान स्थिति में भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता,2023 की धारा 20 में अभियोजन निदेशालय की स्थापना का प्रावधान रखा गया है। निदेशालय का उद्देश्य राज्य की आपराधिक न्याय मशीनरी की रीढ़ बनना है, जो अन्वेषण और निर्णय के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। इसका नेतृत्व अभियोजन निदेशक द्वारा किया जाता है, जो राज्य के गृह विभाग के प्रशासनिक

[3] सेक्शन 24, दंड प्रक्रिया संहिता,1973 (अब सेक्शन 18, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023)

[4] सेक्शन 24(8), दंड प्रक्रिया संहिता,1973 (अब सेक्शन 18(8), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023)

[5] सेक्शन 25, दंड प्रक्रिया संहिता,1973 (अब सेक्शन 19, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023)

[6] सेक्शन 24(4), दंड प्रक्रिया संहिता,1973 (अब सेक्शन 18(4), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023)

नियंत्रण में कार्य करता है। सभी उपनिदेशक और अभियोजन अधिकारी निदेशक के अधीनस्थ होते हैं और एक एकीकृत प्रशासनिक संरचना बनाते हैं।

3.1 अभियोजक की कार्यात्मक भूमिका और कर्तव्य :-

लोक अभियोजक की भूमिका भारतीय आपराधिक न्याय व्यवस्था की विरोधाभासात्मक प्रणाली (adversarial system) के अंतर्गत इस प्रकार परिभाषित होती है कि राज्य और बचाव पक्ष के बीच प्रतिस्पर्धी निर्णय प्रक्रिया में अभियोजक की प्राथमिक भूमिका केस जीतना नहीं, बल्कि न्याय किया जाए यह सुनिश्चित करना है। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों से उत्तराधिकार में प्राप्त कॉमन लॉ की इस विरोधाभासात्मक प्रणाली (adversarial system) में यह माना जाता है कि निष्पक्ष न्यायाधीश के समक्ष अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत किये गए अपने-अपने तथ्यों से सत्य और न्याय स्थापित किया जाता है। न्यायाधीश यह देखने के लिए अम्पायर की तरह कार्य करता है कि क्या अभियोजन पक्ष मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे निश्चित रूप से सिद्ध करने में सफल हुआ है, यदि नहीं तो अभियुक्त को संदेह का लाभ दे देता है। इस प्रणाली में अपनी निष्पक्षता की छवि को बनाए रखने की उत्सुकता में न्यायाधीश सत्य का पता लगाने के लिए कभी भी कोई पहल नहीं करता है। वह जांच अथवा न्यायालय में साक्ष्य पेश करने के मामले में कमियों को दूर नहीं करता है। विरोधाभासात्मक प्रणाली में सत्य का पता लगाने का कार्य स्पष्टतः न्यायाधीश का नहीं होता इसलिए वह तटस्थ भूमिका निभाता है। विधि आयोग और देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने लगातार इस बात पर बल दिया है कि लोक अभियोजक "न्याय प्रशासक" है और इस रूप में उनका कर्त्तव्य न्यायालय को मामले की सत्य और निष्पक्ष तस्वीर प्रदान करना है।[7] अभियोजन पक्ष की भूमिका आपराधिक न्याय प्रणाली में निम्नानुसार होती है -

I. **सभी साक्ष्य पेश करना :** अभियोजन पक्ष को न्यायालय के सामने सभी उपलब्ध साक्ष्य रखने चाहिए, जिसमें ऐसे साक्ष्य भी शामिल हैं जो आरोपी के पक्ष में हो सकते हैं। भौतिक तथ्यों का दमन विधिक नैतिकता और निष्पक्ष विचारण के सिद्धांतों का उल्लंघन है।
II. **निष्पक्षता और स्वतंत्रता :** अभियोजन पक्ष राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, उन्हें सरकार और पुलिस दोनों से स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहिए। वे किसी राजनीतिक दल या जांच एजेंसी के प्रतिनिधि नहीं हैं।
III. **निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना:** अभियोजक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियुक्त के साथ गलत व्यवहार नहीं किया जाए और कार्यवाही उचित संदेह से परे साक्ष्य की आवश्यकता का पालन करती है।

3.2 अभियोजक के कोर प्रक्रियात्मक कार्य :-

पुलिस द्वारा अपना अन्वेषण पूरा करने और अंतिम रिपोर्ट (चार्जशीट) दाखिल करने के बाद अभियोजक की भूमिका और भागीदारी आपराधिक न्याय प्रक्रिया में प्रारंभ होती है। अभियोजक के कोर प्रक्रियात्मक कार्य निम्नवत होते हैं -

I. **आरोप-पत्र की जांच:** मुकदमा शुरू होने से पहले, अभियोजक अनुसंधान एजेंसी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्यों की सामर्थ्य का मूल्यांकन करता है। हालाँकि अभियोजक अनुसंधान प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं कर सकते, लेकिन वे अभियोजन पक्ष की व्यवहार्यता पर विधिक परामर्श प्रदान करते हैं।
II. **विचारण के दौरान मामले के अभियोजन का संचालन:** अभियोजक अभियोजन पक्ष का नेतृत्व करता है, गवाहों की जांच करता है और अपराध कारित किए जाने को स्थापित करने के लिए विधिक तर्क प्रस्तुत करता है।

[7] भारतीय विधि आयोग की 154वीं रिपोर्ट, https://eparlib.sansad.in/handle/123456789/35432?view_type=browse वेबसाइट पर ऑनलाइन उपलब्ध.

III. **अभियोजन की वापसी:** अभियोजक को न्यायालय की सहमति से किसी मामले से हटने अर्थात अभियोजन की वापसी की शक्ति प्रदान करती है।[8] यह शक्ति एक वैधानिक ट्रस्ट है और इसका प्रयोग कार्यपालिका के निर्देशों के बजाय न्याय-प्रशासन के हित में स्वतंत्र रूप से किया जाना चाहिए।

IV. **अभियोजक की परामर्शदायी भूमिका :-** अभियोजक विभिन्न शासकीय विभागों से प्राप्त संदर्भों के बारे में पुलिस अधिकारियों को परामर्श या सलाह देने का कार्य करते हैं और इस बात पर परामर्श देते हैं कि क्या किसी मामले में आरोपी की दोषमुक्ति को उच्च न्यायालय में चुनौती दी जानी चाहिए या नहीं।

4. भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में अभियोजन से संबंधित समस्याएं एवं चुनौतियाँ -

4.1 पुलिस और अभियोजन के बीच समन्वय का अभाव :-

दुनिया के किसी भी हिस्से में न्याय वितरण प्रणाली की सफलता उसके विभिन्न अंगों के बीच समन्वय पर निर्भर करती है। हमारे देश की आपराधिक न्याय प्रणाली में पुलिस और अभियोजन पक्ष को एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप से काम करना होता है, लेकिन दोनों को एक-दूसरे के पूरक की भूमिका में भी रहते हैं। पुलिस और अभियोजन पक्ष में कभी-कभी अनुसंधान के मुद्दों पर समन्वय की कमी होती है। उनके कार्य एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं, क्योंकि अनुसंधान या अन्वेषण का कार्य न्यायालय के बाहर का कार्य है, जबकि अभियोजक की भूमिका न्यायालय के भीतर होती है। अनुसंधान अभिकरण अर्थात् पुलिस और अभियोजन एक दूसरे पर निर्भर हैं, इसलिए उन्हें न्याय प्रदान करने की दृष्टि से सामंजस्य स्थापित करते हुए कार्य करना चाहिए। अनुसंधान एजेंसी और अभियोजन एजेंसी के बीच घनिष्ठ समन्वय से भी आपराधिक मामलों के परिणाम में सुधार होना चाहिए।

4.2 अभियोजन का बोझ -

अधीनस्थ न्यायालयों में बड़ी संख्या में आपराधिक प्रकरणों के विचारण लंबित हैं। अभियोजकों पर प्रकरणों का आधिक्य होने के चलते बोझ है और उन्हें सौंपे गए मामलों को कुशलतापूर्वक संभालने के लिए देश की अभियोजन व्यवस्था में उनकी संख्या पर्याप्त नहीं है। अभियोजक को सौंपे जाने वाले मामलों की संख्या के बारे में एक मानदंड तय करना मुश्किल है, क्योंकि यह मामले की प्रकृति पर निर्भर करता है।

4.3 उचित प्रशिक्षण का अभाव :-

न्याय वितरण प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अभियोजकों के संस्थागत प्रशिक्षण की वर्तमान समय में उचित व्यवस्था नहीं है। संस्थागत प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था ना होने के कारण सामान्यतः यह देखा गया है कि वे अनुभव से सीखते हैं, लेकिन इसमें समय लगता है और इस बीच प्रकरणों में गिरावट आती है। अभियोजकों को उचित प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तरों पर सक्षम प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए जाने चाहिए। प्रशिक्षण का सुनियोजित मॉड्यूल निर्धारित किया जाना चाहिए।

4.4 बुनियादी ढांचे की कमी :-

अभियोजन पक्ष के अधिकारियों को बचाव पक्ष के अनुभवी अधिवक्ताओं का सामना करने के लिए कानून के विषद और स्पष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस तरह के ज्ञान को आत्मसात करने के लिए अभियोजन कार्यालय में सुसज्जित पुस्तकालय डिजिटल लीगल डेटाबेस सहित होना आवश्यक है। सामान्यतः अधीनस्थ न्यायालयों में यह देखने में आता है कि विधि पुस्तकों एवं ऑनलाइन लीगल डेटाबेस की कमी अक्सर अभियोजन अधिकारियों के उचित कामकाज में बाधा बन जाती है।

[8] धारा 321 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (अब धारा 360 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023)

4.5 कार्यपालिक एवं राजनैतिक प्रभाव :-

लोक अभियोजक के कामकाज की निगरानी के लिए कोई प्रभावी तंत्र की व्यवस्था वर्तमान आपराधिक न्याय व्यवस्था के भीतर परिलक्षित नहीं होती है। भर्ती प्रक्रिया अर्थात् नियुक्ति प्रक्रिया या तो कमजोर है या राजनीतिक रूप से प्रेरित और प्रभावित है। अपनी पसंद के लोक अभियोजक और अतिरिक्त लोक अभियोजकों की नियुक्ति करना राज्य सरकारें अपना विशेषाधिकार समझती हैं। यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता (अब नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023) अभियोजन निदेशालय के गठन का प्रावधान करती है और सामान्यतः जिला न्यायाधीश के रैंक के व्यक्ति को निदेशक के रूप में नियुक्त किया जाता है, फिर भी उसे राज्य में गृह विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करना आवश्यक है।[9] गृह सचिव ने अभियोजन निदेशालय से संबंधित मामलों में शायद ही कोई रुचि कभी दिखायी हो। निदेशक और उपनिदेशक को कोई कार्यात्मक स्वतंत्रता नहीं है और वे केवल पीपी/एपीपी पर परिधीय पर्यवेक्षण कर सकते हैं।

4.6 क्षमता और परिश्रम की कमी :-

अभियोजन में देरी के संबंध में मुख्य समस्या यह है कि उचित प्रशिक्षण के बिना ईमानदारी और क्षमता की कमी से अभियोजन के कामकाज पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे मामलों के निपटान में देरी होती है। जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य विचार के आधार पर किसी व्यक्ति के खिलाफ पक्षपात या पूर्वाग्रह और भेदभाव के आधार पर नियुक्तियां अभियोजन को अक्षमता की ओर ले जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप मामलों के निपटान में विलंब का कारण बनता है। अभियोजन अभिकरण की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या अभियोजन एजेंसी में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों की कामकाज की दृष्टि से निम्न गुणवत्ता है।

4.7 पुस्तकालय सुविधा का अभाव :

अभियोजकों के पास सामान्यतः पुस्तकालय की अच्छी सुविधाएं नहीं होती हैं। उनके अपर्याप्त वेतनमान के कारण, वे पुस्तकों पर खर्च करने की स्थिति में भी नहीं होते हैं। बार के पुस्तकालयों में भीड़भाड़ होती है और अभियोजकों को पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। सरकारी खर्च पर शहरों और बड़े कस्बों में अभियोजकों के लिए विशेष पुस्तकालय स्थापित किए जाने चाहिए।

4.8 कार्यालय सुविधाओं का अभाव और प्रतिकूल कार्य वातावरण :-

लोक अभियोजकों के अधिकांश कार्यालयों में अपर्याप्त कर्मचारी, अपर्याप्त स्थान और फर्नीचर का अभाव है। यहां तक कि भर्ती नियमों में भी पर्याप्त लिपिक और सहायक कर्मचारी उपलब्ध नहीं हैं।

4.9 अभियोजकों की कम संख्या के कारण मामलों के निपटान में विलंब :-

किसी भी न्यायालय में अभियोजक की अनुपलब्धता से बचने के लिए अभियोजकों की पदोन्नति या सेवानिवृत्ति के कारण रिक्तियां उत्पन्न होने पर एक समयबद्ध कार्यक्रम के रूप में या तो अभियोजकों के कार्यकाल की समाप्ति से पहले ही उनके मौजूदा कार्यकाल की अवधि को नवीनीकृत करने के लिए या उक्त अभियोजकों के स्थान पर नए अभियोजकों को नियुक्त करने के लिए रिक्तियां निर्मित होने से पूर्व ही रिक्तियों को भरने के प्रयास किए जाने चाहिए।

4.10 ई-समन, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और डिजिटल केस ट्रैकिंग हेतु डिजिटल उपकरणों एवं तकनीकी बुनियादी संरचना की कमी -

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता 2023, के अंतर्गत ई-समन, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और डिजिटल केस ट्रैकिंग जैसे डिजिटल उपकरणों पर निर्भरता के लिए एक मजबूत तकनीकी बुनियादी ढांचे की देश में आवश्यकता है, जो अभी तक पूरे भारत में एक समान नहीं है। फास्ट-ट्रैक मामलों में ई-समन को अपनाया जा रहा है, लेकिन कई पुलिस स्टेशनों और

[9] सेक्शन 20(3), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023

स्थानीय न्यायालयों में अभी भी अनिवार्य वीडियोग्राफी और "ई-साक्ष्य" अपलोड के लिए डिजिटल उपकरणों की कमी है। आधुनिक अभियोजन प्रणाली की सफलता इस डिजिटल आवश्यकता की पूर्ति करने और सभी हितधारकों के लिए निरंतर प्रशिक्षण सुनिश्चित करने पर निर्भर करती है।

4.11 राजनीतिक प्रभाव और अभियोजन वापसी की शक्ति :-

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अंतर्गत अभियोजन वापसी (withdrawal of prosecution) की राज्य की शक्ति कानूनी विवाद के लिए एक फ्लैशपॉइंट बनी हुई है। राजनीतिक व्यक्तित्वों से जुड़े मामलों में अभियोजक की स्वतंत्रता पर अधिकांशतः सवाल खड़े किए जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने ***श्योनंदन पासवान बनाम बिहार राज्य***[10] *के केस* में इस बात पर जोर दिया है कि अभियोजक को कार्यपालिका के प्रभाव के अधीन हुए बिना विवेकपूर्ण तरीके से अपना मस्तिष्क लगाना चाहिए।

4.12 अभियोजक द्वारा अपर्याप्त तैयारी और साक्ष्य के मूल्यांकन की कमी से आपराधिक मामलों के निर्णय में विलंब की स्थिति निर्मित होना -

अभियोजक के अत्यधिक कार्यभार के परिणामस्वरूप प्रकरण के लिए अपर्याप्त तैयारी की स्थिति अक्सर निर्मित हो सकती है। अभियोजकों द्वारा एक स्पष्ट रूपरेखा दिखाने में विफलता कि वे अपने मामलों को कैसे प्रस्तुत करते हैं, न्यायालय के लिए प्रकरणों को सुनने और निर्धारित करने के लिए पर्याप्त समय आवंटित करना मुश्किल बना देता है।

5. भारतीय विधि आयोग की अभियोजन से संबंधित अनुशंसाएं -

भारतीय विधि आयोग अभियोजन प्रणाली में अपेक्षित सुधार के लिए निरंतर कार्यपालिका और अनुसंधान शाखा से अपनी स्वतंत्रता की वकालत करता रहा है।

5.1 भारतीय विधि आयोग की 14 वीं रिपोर्ट (1958) - न्यायिक प्रशासन में सुधार

भारतीय विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट एक ऐतिहासिक दस्तावेज थी जिसने अभियोजन पक्ष को पुलिस से आधुनिक रूप से अलग करने की नींव रखी। विधि आयोग की इस रिपोर्ट में कहा गया है कि कई राज्यों में पुलिस ने अभियोजन पक्ष पर अनुचित नियंत्रण रखा, जिससे प्रक्रिया की निष्पक्षता कम हो गई। आयोग ने अनुशंसा की कि हर जिले में एक अलग अभियोजन विभाग बनाया जाए, जिसकी अध्यक्षता "लोक अभियोजन निदेशक" द्वारा की जाए, जो पुलिस विभाग से स्वतंत्र हो और सीधे राज्य सरकार के प्रति जिम्मेदार हो। यह अनुशंसा इस तर्क में निहित थी कि किसी अपराध के अनुसंधान में सम्मिलित व्यक्ति दोषसिद्धि हासिल करने की दिशा में पूर्वाग्रह विकसित कर सकता है, जबकि एक स्वतंत्र अभियोजक न्याय के हित को प्राथमिकता देगा।[11]

5.2 भारतीय विधि आयोग की 41 वीं रिपोर्ट (1969) - दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन

भारतीय विधि आयोग की 41 वीं रिपोर्ट के कारण 1973 में नई सीआरपीसी लागू हुई। भारतीय विधि आयोग की 41 वीं रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया गया कि लोक अभियोजकों के पास मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करने से पहले पुलिस रिपोर्टों की जांच करने का अधिकार होना चाहिए, अनिवार्य रूप से कष्टप्रद या निराधार परीक्षणों/विचारणों को रोकने के लिए एक फिल्टर के रूप में यह कार्य करेगा। रिपोर्ट में अभियोजन कार्यालय के पेशेवर मानकों में वृद्धि के लिए नियुक्तियों की न्यूनतम योग्यता भी निर्धारित की गई।[12]

---

[10] (1983) 1 SCC 438

[11] भारतीय विधि आयोग की 14 वी रिपोर्ट ://rsdebate.nic.in/bitstream/123456789/562522/2/ID_27_24111959_2_p228_p300_19.pdf पर ऑनलाइन उपलब्ध.

[12] भारतीय विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट, दंड प्रक्रिया संहिता 1898.

5.3 भारतीय विधि आयोग की 154 वीं रिपोर्ट (1996) - संस्थागतकरण[13]

भारतीय विधि आयोग की 154वीं रिपोर्ट में यौन अपराधों के अभियोजन में लैंगिक संवेदनशीलता की आवश्यकता जैसी उभरती चुनौतियों का समाधान किया गया है। इस रिपोर्ट में महिलाओं से जुड़े मामलों को संभालने के लिए पर्याप्त संख्या में महिला लोक अभियोजकों और सहायक लोक अभियोजकों की नियुक्ति की अनुशंसा की गई है। पीड़ितों को और अधिक सुरक्षित अनुभव कराया जाए तथा अभियोजन आवश्यक संवेदनशीलता के साथ संचालित किया जाए यह सुनिश्चित करने की अनुशंसा भी इस रिपोर्ट में की गयी है।

6. अभियोजन प्रणाली पर सर्वोच्च न्यायालय के प्रासंगिक निर्णय : -

न्यायपालिका ने लोक अभियोजक की स्वायत्तता की रक्षा करने और न्यायालय के एक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों को परिष्कृत करने में निर्णायक भूमिका निभाई है। अभियोजन तंत्र की निष्पक्षता, प्रभावशीलता और दक्षता के संवर्धन के उद्देश्य से माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा महत्वपूर्ण प्रासंगिक न्यायिक दृष्टान्त निम्नवत हैं -

6.1 एसबी शहाणे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1995)[14]

इस मामले में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया कि निष्पक्षता और न्याय सुनिश्चित करने के लिए अनुसंधान और अभियोजन संबंधी कार्यों को पूरी तरह से अलग किया जाना चाहिए। राज्य सरकारों को सहायक लोक अभियोजकों का एक अलग संवर्ग गठित करना चाहिए और एक स्वतंत्र अभियोजन विभाग बनाना चाहिए। अभियोजन पक्ष का प्रमुख एक स्वतंत्र अधिकारी होना चाहिए जो सीधे राज्य सरकार के प्रति जिम्मेदार हो, न कि पुलिस नेतृत्व के प्रति। इस ऐतिहासिक निर्णय ने देशभर के राज्यों को अभियोजन तंत्र को एक स्वायत्त इकाई के रूप में संस्थागत बनाने की दृष्टि से अभियोजन निदेशालय की स्थापना के लिए बाध्य किया।

6.2 विनीत नारायण बनाम भारत संघ (1997)[15]

"जैन हवाला" घोटाले से संबंधित इस मामले में उच्च पदस्थ राजनेताओं और ब्यूरोक्रेट्स के खिलाफ भ्रष्टाचार के सबूतों को स्थापित करने में केंद्रीय जांच एजेंसियों की विफलता शामिल थी। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने जांच की निगरानी के लिए "कंटीन्यूइंग मैंडेमस" मॉडल का प्रयोग किया और केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) जैसी एजेंसियों को राजनीतिक हस्तक्षेप से बचाने के लिए ऐतिहासिक दिशानिर्देश जारी किए। इस ऐतिहासिक निर्णय में सीबीआई की स्वायत्तता को सुरक्षित करने की दृष्टि से एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति द्वारा सीबीआई निदेशक की नियुक्ति और सीबीआई निदेशक के लिये दो वर्ष के निश्चित कार्यकाल के प्रावधान के दिशानिर्देश माननीय सुप्रीम कोर्ट ने दिए।

6.3 कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी विरुद्ध उत्तरप्रदेश राज्य (1991)[16]

इस निर्णय में माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अभियोजन कार्यालय की सार्वजनिक प्रकृति को रेखांकित करते हुए राज्य में सरकार के बदलने के बाद उत्तरप्रदेश में सभी सरकारी वकीलों की सामूहिक बर्खास्तगी को खारिज कर दिया था तथा इसे मनमाना और राजनीति से प्रेरित निर्णय करार दिया था। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने इस बात पर बल दिया कि लोक अभियोजक का चयन जनविश्वास का विषय है और नियुक्तियां राजनीतिक संबद्धता के बजाय योग्यता एवं सक्षमता के आधार पर होनी चाहिए।

---

[13] भारतीय विधि आयोग की 154 वीं रिपोर्ट, https://lawcommissionofindia.nic.in/report_fourteenth/ पर ऑनलाइन उपलब्ध.

[14] एस.बी. शहाणे विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य 1995 suppl.(3) SCC 37

[15] विनीत नारायण विरुद्ध भारत संघ [1 SCC 226]

[16] कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी विरुद्ध उत्तरप्रदेश राज्य AIR 1991 SC 537

6.4 ज़ाहिरा हबीबुल्लाह शेख विरुद्ध गुजरात राज्य (2004)[17]

"बेस्ट बेकरी" नाम से विख्यात इस केस में निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए अभियोजक के कर्तव्य को रेखांकित करते हुए माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया कि आर्टिकल 21 के अंतर्गत निष्पक्ष सुनवाई एक मौलिक अधिकार है। अभियोजक वस्तुतः न्यायालय के एक अधिकारी के रूप में सही तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिए बाध्य है।

6.5 उ.प्र. राज्य विरुद्ध जौहरीमल (2004)[18]

माननीय सुप्रीम कोर्ट ने इस केस में शासकीय अधिवक्ताओं की नियुक्तियों और उनके नवीनीकरण के मुद्दे पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि यह सही है कि सरकार के पास अपने अधिवक्ता को चुनने का विवेक है, लेकिन सरकार को इस विवेक का प्रयोग उचित और निष्पक्ष रूप से करना चाहिए। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि एक लोक अभियोजक का पद न्यायालय और जनता के प्रति कर्तव्यों के साथ एक सार्वजनिक कार्यालय है और इस प्रकार इसे विशुद्ध रूप से निजी प्रोफेशनल जुड़ाव के रूप में नहीं माना जा सकता है।

7. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS), 2023 के अंतर्गत अभियोजन तंत्र में परिवर्तन:-

दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के स्थान पर अधिनियमित हुए भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (बीएनएसएस) 2023 के अंतर्गत भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली में तकनीकी और संरचनात्मक क्रांति की ओर बढ़ते हुए प्रक्रिया के हर चरण में डिजिटल डॉक्यूमेंटेशन एवं इलेक्ट्रॉनिक कम्युनिकेशन को एकीकृत करके अन्वेषण, ट्रायल और साक्ष्य प्रबंधन को आधुनिक बनाया गया है।

7.1 अनिवार्य अभियोजन निदेशालय -

सीआरपीसी की धारा 25ए में राज्यों को अभियोजन निदेशालय स्थापित करने का विकल्प दिया गया था। किन्तु अब भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता में अभियोजन निदेशालय की स्थापना को अनिवार्य कर दिया गया है और एक स्पष्ट रूप से परिभाषित पदानुक्रम भी इसमें निर्धारित किया गया है। राज्य स्तर पर अभियोजन निदेशालय जिसमें अभियोजन निदेशक और उपनिदेशक शामिल होते हैं। जिला स्तर पर प्रत्येक जिले में एक जिला अभियोजन निदेशालय, जिसमें उप निदेशक और सहायक निदेशक शामिल हैं। विशेषज्ञता के उच्च स्तर को सुनिश्चित करने के लिए एक निदेशक या उपनिदेशक की अहर्ता के लिए एडवोकेट के रूप में न्यूनतम 15 वर्ष की प्रैक्टिस या सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्यानुभव को निर्धारित किया गया है। सहायक निदेशकों के पास 07 वर्ष की प्रैक्टिस होना चाहिए या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट होना चाहिए।[19]

7.2 अपराध की गंभीरता के आधार पर अनिवार्य भूमिकाएँ

पुरानी आपराधिक प्रक्रिया संहिता अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अंतर्गत अभियोजन निदेशालय के कार्यों को अधिकांशतः राज्य के विवेक पर छोड़ दिया गया था, किंतु अब नई आपराधिक प्रक्रिया संहिता अर्थात् भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 के अंतर्गत अपराध से जुड़े दंड के आधार पर विशिष्ट निगरानी भूमिकाओं को अनिवार्य किया गया है। अर्थात **अभियोजन निदेशक** 10 वर्ष या उससे अधिक कारावास, आजीवन कारावास या मृत्युदण्ड की सजा वाले मामलों की निगरानी करने के लिए अनिवार्य है। **अभियोजन उपनिदेशक** पुलिस रिपोर्टों की जांच करने और

[17] ज़ाहिरा हबीबुल्लाह शेख विरुद्ध गुजरात राज्य (2004) 4 एससीसी 158

[18] उ.प्र. राज्य विरुद्ध जौहरीमल AIR 2004 SC 3800

[19] सेक्शन 20, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023

07 वर्ष या उससे अधिक किंतु 10 वर्ष से कम की सजा वाले मामलों की निगरानी करने के लिए अनिवार्य है। **अभियोजन के सहायक निदेशक** 07 वर्ष से कम कारावास से दंडनीय मामलों की निगरानी करने के लिए अनिवार्य हैं।

7.3 प्रौद्योगिकी और फोरेंसिक साइंस का एकीकरण -

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता के अंतर्गत कुछ परिवर्तनकारी प्रावधान प्रस्तुत किये गए हैं, जो सीधे अभियोजक के दिन-प्रतिदिन के कार्यों को प्रभावित करते हैं:

इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य प्रबंधन -

"दस्तावेजों" की परिभाषा का विस्तार इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल रिकॉर्ड, जैसे सीसीटीवी फुटेज, एसएमएस और त्वरित संदेशों को शामिल करने के लिए किया गया है। अभियोजकों को अब अपराध स्थलों से डिजिटल रिकॉर्डिंग अपलोड करने और सत्यापित करने के लिए "ई-साक्ष्य" को नेविगेट करना होगा।

अनिवार्य फोरेंसिक जांच -

07 वर्ष या उससे अधिक की सजा वाले अपराधों के लिए फोरेंसिक टीमों को अपराध स्थल का दौरा करना अनिवार्य कर दिया गया है और पूरी साक्ष्य संग्रह प्रक्रिया की वीडियोग्राफी किया जाना भी आवश्यक है।[20] अभियोजक की भूमिका में अब यह सुनिश्चित करना सम्मिलित है कि साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ को रोकने के लिए इस वैज्ञानिक प्रोटोकॉल का सख्ती से पालन किया जाए।

7.4 समयबद्ध प्रक्रियाएं -

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता के अंतर्गत प्रणालीगत देरी का समाधान करने के लिए बाध्यकारी समयसीमा निर्धारित की गयी है। अन्वेषण 90 दिनों के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। गंभीर मामलों में इस समयसीमा को 180 दिनों तक बढ़ाया जा सकता है और ट्रायल के समापन के बाद 30 से 45 दिनों के भीतर निर्णय सुनाया जाना चाहिए।

7.5 ई-अभियोजन और आईसीजेएस :

इंटरऑपरेबल क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम (आईसीजेएस 2.0) परियोजना पुलिस, जेलों, फोरेंसिक और अभियोजन पक्ष के डेटाबेस को आपस में जोड़ती है। "ई-प्रॉसिक्यूशन" एप्लिकेशन अभियोजकों को केस फाइलों को डिजिटल रूप से प्रबंधित करने, कागजी रिकॉर्ड पर निर्भरता को कम करने और मामले की प्रगति की वास्तविक समय की निगरानी को सक्षम करने की अनुमति देता है।

निष्कर्ष -

निष्कर्षतः कहा सकता है कि लोक अभियोजक को कार्यपालिका और सभी बाहरी प्रभावों से स्वतंत्र होना चाहिए, जो पुलिस और अनुसंधान प्रक्रिया से भी स्वतंत्र हो। वह अनुसंधान से जुड़े मामलों में पुलिस को सलाह नहीं दे सकते। वह कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतंत्र है। वह न्यायालय से स्वतंत्र हैं, लेकिन न्यायालय के प्रति उनके कर्तव्य हैं। वह न्यायालय में प्रकरण, अपील और अन्य प्रक्रियाओं के प्रभारी हैं। वास्तव में, लोक अभियोजक न्यायिक प्रक्रिया का एक अंग, न्यायालय का अधिकारी और न्यायालय की सहायता करने वाला न्याय प्रशासक है।विधि शासन के अनुसार अपराधियों को न्याय के कटघरे में लाने के लिए ना केवल राज्य और जनता के प्रति लोक अभियोजक का कर्तव्य होता है, बल्कि अभियुक्तों के प्रति भी उसके कर्तव्य हैं ताकि निर्दोष व्यक्तियों को दोषी न ठहराया जा सके।

[20] सेक्शन 176(3) भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023

उद्धृत कार्य (सन्दर्भ) :-

1. K.N. Chandrasekharan Pillai, R.V. Kelkar's Criminal Procedure, 6th Edition, 2018, Eastern Book Company.
2. K.D. Gaur, Criminal Law, Criminology and Administration of Criminal Justice, Third Edition, 2015, Universal Law Publishing.
3. बटुक लाल, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, खंड 1, 4th संस्करण, 2018, ओरिएंट पब्लिशिंग कंपनी
4. डॉ. शैलेंद्र कुमार अवस्थी, दण्ड प्रक्रिया संहिता, खंड 1, पाँचवाँ संस्करण, 2023, अशोका लॉ हाउस, नई दिल्ली
5. H.R. Bhardwaj, The Criminal Justice System in India, 2019, koanark Publishers Pvt Ltd. New Delhi
6. भारतीय विधि आयोग की 14 वी रिपोर्ट, 1958 ://rsdebate.nic.in/bitstream/123456789/562522/2/ID_27_24111959_2_p228_p300_19.pdf पर ऑनलाइन उपलब्ध.
7. भारतीय विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट, 1969 भारतीय विधि आयोग की 154वीं रिपोर्ट, 1996 https://eparlib.sansad.in/handle/123456789/35432?view_type=browse वेबसाइट पर ऑनलाइन उपलब्ध.
8. भारतीय विधि आयोग की लोक अभियोजक की नियुक्ति संबंधी 197वीं रिपोर्ट (2006)